एम/एस. सैत नागजी पुरुषोत्तम एंड कम्पनी लिमिटेड

बनाम

विमलभाई प्रभुलाल एवं अन्य

4 अक्टूबर, 2005

[अरुण कुमार और ए. के. माथुर, जे. जे.]

किराया नियंत्रण और बेदखली :

केरल भवन (पट्टा और किराया नियंत्रण) अधिनियम, 1965:

धारा 11 (3) वास्तविक आवश्यकता, व्यवसाय के विस्तार के लिए परसिर की आवश्यकता, बेदखली, रखरखाव- अभिनिर्धारित : व्यवसाय की प्रकृति एवं स्थान का चयन सदैव मकान मालिक का विशेषाधिकार होता है - किराएदार शर्तों को निर्धारित नहीं कर सकता है - यह तर्क अपोषणीय है कि विवादग्रस्त परसिर पर व्यवसाय का विस्तार करने की आवश्यकता वास्तविक इसलिए नहीं है, क्योंकि मकान मालिक व उसका लड़का पहले से ही कसिी अन्य स्थान पर व्यवसाय कर रहे हैं और मकान मालिक का एक लड़का विदेश में बसा हुआ है - और यह भी कि जमीनदार विवाद में लम्बा समय लगता है और कोई अनिश्चित काल तक इंतजार नहीं कर सकता और न ही घटनाओं में हो रही वृद्धि को रोका जा सकता है - जब तक कि कोई पश्चातवर्ती घटना सारतः अनुतोष के आधार को ही ना बदल दे, वास्तविक आवश्यकता उस दिनांक से देखी जानी चाहिए, जिस दिन बेदखली का दावा पेश किया गया था - अतः मकान मालिक बेदखली का अधिकारी है।

धारा 11 (17) संरक्षण, पात्रता -1918 से किराए के परिसर पर कब्जाधीन पुरानी फर्म का 1948 में निगमित प्राइवेट लिमिटेड कंपनी में गठन -

साझेदारी में किराएदारी अधिकार - दावा - अभिनिर्धारित : एक कम्पनी का नवनिगमित कम्पनी में स्वैच्छिक हस्तांतरण पर यह अभिकथित और साबित करना ही होगा कि पुरानी फर्म के समस्त सदस्य नई फर्म में निरंतर बने रहे हैं - किरायेदार यह साबित करने में विफल रहा कि प्राइवेट लिमिटेड कंपनी ने निदेशक मंडल में वही भागीदार रखे थे जो पुरानी फर्म में 1948 से पहले थे - यह निगमन की तारीख से नवगठित अलग कानूनी इकाई थी- इसलिए, किराएदार धारा 11 (17) के तहत सुरक्षा का अधिकारी नहीं है - इसके अलावा, किसी अन्य मामले की दलीलों पर विचार नहीं किया जा सकता है, पक्षकार को तर्क देना होगा और अपना मामला साबित करना होगा - कंपनी अधिनियम, 1930-सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 संयुक्त हिंदू परिवार के पास एक सी. इमारत थी। संयुक्त परिवार के सदस्यों ने एक साझेदारी फर्म का गठन किया। इमारत को उस फर्म के किराएदारों को किराए पर दिया गया था जो 1918 से परिसर पर कब्जाधीन थे। साझेदारी फर्म को बाद में 1948 में एक प्राइवेट लिमिटेड कंपनी में बदल दिया गया।

उक्त संयुक्त हिंदू परिवार के सदस्यों के बीच विभाजन हो रखा था और भवन का बड़ा हिस्सा मकान मालिकों द्वारा प्रतिनिधित्व किए गए समूह को आवंटित किया गया था। मकान मालिकों ने केरल भवन (पट्टा और किराया नियंत्रण) अधिनियम, 1965 की धारा 11 (3) के तहत बेदखली के लिए मुकदमा दायर किया कि उनके बेटों ने अपनी शिक्षा पूरी कर ली थी और बेरोजगार थे और वे अपने व्यवसाय के लिए इमारत चाहते थे। धारा 11 (4) (i) के तहत उप-किराएदारी के आधार पर और धारा 11 (4) (ii) के तहत परिसर के भौतिक परिवर्तन के आधार पर। किरायेदार ने तर्क दिया कि वह स्थायी पट्टेदार था; कि आवश्यकता वास्तविक नहीं थी; कि कोई भौतिक परिवर्तन नहीं था; और कि किरायेदारी 1940 से पहले चालु थी, और इस आधार उसे बेदखल नहीं किया जा सकता। किराया नियंत्रक ने किराएदार को बेदखल करने से मकान मालिकों को इनकार कर दिया। इसके बाद मकान मालिकों ने एक अपील दायर की। अपीलीय प्राधिकरण ने आंशिक रूप से अपील की अनुमति दी और धारा 11 (3) के तहत बेदखली के आदेश दिए और अधिनियम की धारा 11 (4) (i) और 11 (4) (ii) के तहत वांछित अनुतोष खारिज कर दिया। मकान मालिक और किरायेदार दोनों ने आदेश के खिलाफ पुनरीक्षण याचिका दायर की।

उच्च न्यायालय द्वारा उक्त आदेश का बरकरार रखा, जिस पर यह अपील प्रस्तुत की गई।

अपीलार्थी-किरायेदार ने तर्क दिया कि मकान मालिकों की वास्तविक आवश्यकता के संबंध में अपीलीय प्राधिकरण के साथ-साथ उच्च न्यायालय का निष्कर्ष सही नहीं है : कि अपीलार्थी-किराएदार को 1940 से परिसर का कब्जा प्राप्त है इसलिए अपीलार्थी अधिनियम की धारा 11 (17) के तहत सुरक्षा का हकदार है; और यह कि किसी अन्य मामले में फर्म के संबंध में दिए गए तर्क सिविल दावे में पेश किए गए वास्तविक साक्ष्यों से असंगत समझी जा सकती है।

न्यायालय ने अपील खारिज करते हुए यह अभिनिर्धारित किया :-

1.1 अपीलीय अदालत व उच्च न्यायालय ने अधीनस्थ न्यायालय के निष्कर्ष को उलट दिया और माना कि प्रतिवादी-मकान मालिकों को स्थान सी पर व्यवसाय शुरू करने की आवश्यकता वास्तविक है और यह नहीं का जा सकता है कि एक व्यक्ति जो पहले से ही व्यवसाय कर रहा है, कोई भी व्यक्ति देश के किसी अन्य स्थान पर अपना व्यवासय विस्तृत नहीं कर सकता। यह न्यायोचित है और इस न्यायालय द्वारा इस आधार पर हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता है कि यह अनुचित और बिना किसी बुनियाद पर आधारित है। मकान मालिकों ने यह दिखाने के लिए सबूत पेश किए हैं कि उनके बेटों में से एक, जिसके पास कम्प्यूटर संस्थान को शुरू करने के लिए आवश्यक योग्यता थी, वह अपने व्यवसाय का विस्तार करने के लिए सी स्थान के साथ अन्य स्थान पर अपना व्यवसाय शुरू

करना चाहते थे, जिसकी न्यायालय द्वारा जांच कर ली गई है। मकान मालिकों, उनके बेटों का व्यवासय दूसरे शहरों में फैला हुआ है और यदि वे सी स्थान सी पर अपना व्यवसाय फैलाना चाहते हैं, तो यह नहीं कहा जा सकता कि यह आवश्यकता एक दिखावटी और अप्राकृतिक है, जिस कारण प्रश्नगत परिसर से किराएदार की बेदखली से इनकार किया गया है। व्यवसाय की प्रकृति और व्यवसाय के स्थान का चयन करना, भू-स्वामी का परमाधिकार है।किराएदारों शर्तों को निर्धारित नहीं कर सकता और न ही भू-स्वामी को सलाह दे सकता है कि उसके क्या करना चाहिए और क्या नहीं। हमेशा मकान मालिक का विशेषाधिकार होता है। यह अभिकथन कि मकान मालिकों के बेटों में से एक विदेश में बस गया है, इस तथ्य से इनकार नहीं किया जा सकता है कि मकान मालिकों के अन्य बेटों को सी स्थान पर अपने व्यवसाय को विस्तार करना चाहते हैं। भारतीय अर्थव्यवस्था वैश्विक हो रही है और इस बात की संभावना से इनकार नहीं किया जा सकता है कि अपव्ययी बेटे अपनी मातृभूमि पर वापस लौट सकते हैं और वे सी स्थान पर अपना व्यवसाय शुरू कर सकते हैं । (1979-ए, बी, सी, डी, एच; 980-ए)

1.2. यह एक सामान्य अनुभव है कि मकान मालिक व किराएदार के मध्य विवाद हमारे देश में लम्बा समय लेता है और मकान मालिक और उनके पुत्र ऐसे प्रकरणों के समाधान के लिए अनिश्चित काल तक इंतजार नहीं कर सकते और जब तक कि किराएदार को संबंधित परिसर से बेदखल

नहीं कर दिया जाता। उन्हें अपने जीवन में कुछ न कुछ करना ही होगाा यह सच है कि न तो मुकदमा शुरू करने वाला व्यक्ति निठल्ला बैठ सकता है और न ही उसके द्वारा घटनाओं के विकास को रोका जा सकता है। इसलिए, जब तक कि कोई पश्चातवर्ती घटना सारतः अनुतोष के आधार को ही ना बदल दे, महत्वपूर्ण घटना को बेदखली के मुकदमे को दायर करने की तारीख से देखा जाना चाहिए। (1979-जी; 980-एफ, जी)

मृतका रामकुबाई (श्रीमती) जरिए विधिक प्रतिनिधि और अन्य बनाम हजारीमा डोकलचंद चांडक और अन्य, [1999] 6 एस.सी.सी. 540; प्रताप राय तनवानी और अन्य बनाम उत्तम चंद और अन्य, [2004] 8 एस.सी.सी. 490 व गया प्रसाद बनाम प्रदीप श्रीवास्तव, [2001] 2 एस.सी.सी. 604, पर निर्भर रखा गया।

2.1. एक कम्पनी का नवनिगमित कम्पनी में स्वैच्छिक हस्तांतरण पर यह अभिकथित और साबित करना ही होगा कि पुरानी फर्म के समस्त सदस्य नई फर्म में निरंतर बने रहे और मूल रूप से वही है। एकमात्र अपवाद जो किया गया है वह यह है कि पुरानी कंपनी का नई कंपनी में स्थानांतरण क़ानूनन या कानून के तहत है। [987-डी]

2.2. अपीलकर्ता-किरायेदार यह साबित करने में विफल रहा कि पुरानी फर्म जो 1918 में वहां थी और बाद में कंपनी अधिनियम, 1930 के

तहत 1948 में गठित एक प्राइवेट लिमिटेड कंपनी में परिवर्तित कर दी गई थी, उसमें सभी निदेशक वही थे, पुरानी साझेदारी फर्म के भागीदार थे। इस दावे में जो साक्ष्य पेश किए गए थे, उनसे यह नहीं कहा जा सकता कि साझेदारी फर्म, जिसे बाद में एक प्राइवेट लिमिटेड कंपनी में बदल दिया गया था, में वही निदेशक थे, और इस तरह साक्ष्यों का पूर्णतया अभाव था। विचारणीय न्यायालय ने पाया कि यह साबित करने के लिए कि फर्म 1940 से किराए की इमारत में चल रही थी, किरायेदार ने यह स्वीकार किया कि किरायेदार-कंपनी के गठन से पहले व्यवसाय साझेदारी फर्म द्वारा संचालित किया जाता था। दस्तावेज़ से यह स्पष्ट दर्शित है कि किरायेदार-कंपनी 1948 में अस्तित्व में आई तथा ज्ञापन और एसोसिएशन के लेख से स्पष्ट दर्शित है कि कंपनी को 06.02.1948 को निगमित किया गया था। इसलिए, यह अभिनिर्धारित किया गया कि किरायेदार-कंपनी निगमन की तारीख से एक पृथक कानूनी इकाई है और साझेदारी के किसी भी किरायेदारी अधिकार का दावा नहीं कर सकती, क्योंकि नवगठित पृथक कानूनी इकाई 06.02.1948 को अस्तित्व में आई थी और इस प्रकार केरल भवन (पट्टा और किराया नियंत्रण) अधिनियम, 1965 की धारा 11(17) के बहुत महत्वपूर्ण घटक का अभाव था। अपीलीय न्यायालय और उच्च न्यायालय ने भी विचारणीय न्यायालय के निष्कर्षों को बरकरार रखा और सही माना कि किरायेदारी केवल 1948 में शुरू हुई थी और इसलिए, किरायेदार अधिनियम की धारा 11(17) के संरक्षण का दावा नहीं कर

सकता है। अधीनस्थ न्यायालयों के इस समवर्ती निष्कर्ष के मद्देनजर कॉर्पोरेट पर्दे को भेदने की शायद ही कोई गुंजाइश थी और इसलिए इसमें हस्तक्षेप करने का कोई आधार नहीं है।

1982-एच; 983-ए-बी-सी-डी-ई-एफ-जीआई

मद्रास बैंगलोर ट्रांसपोर्ट कंपनी (पश्चिम) बनाम इंदर सिंह और अन्य, [1986] 3 एससीसी 62 से भिन्नता पाई गई।

सिंगर इंडिया लिमिटेड बनाम चंदर मोहन चड्ढा और अन्य, [2004] 7 एससीसी 1; इलेक्ट्रिकल केबल डेवलपमेंट एसोसिएशन बनाम अरुण कमर्शियल परिसर सहकारी हाउसिंग सोसाइटी लिमिटेड और अन्य, [1998] 5 एससीसी 396; जी श्रीधरमूर्ति बनाम हिंदुस्तान पेट्रोलियम कॉर्पोरेशन लिमिटेड और अन्य, [1995] 6 एससीसी 605; जानकी देवी (श्रीमती) और अन्य। वी. जी.सी. जैन, [1994] 5 एससीसी 337(11) और कॉक्स एंड किंग्स लिमिटेड और अन्य। वी. चंदर मल्होत्रा (श्रीमती), [1997] 2 एससीसी 687, पर निर्भर रखा गया।

विश्व नाथ और अन्य. वी. चमन लाल खन्ना और वरिष्ठ, एआईआर (1975) दिल्ली 117, के संदर्भित में रहा।

2.3. फर्म के संबंध में किसी अन्य मामले में अभिकथित तथ्यों पर विचार नहीं किया जा सकता है, किंतु यह साबित करने के लिए कि वही फर्म 01.04.1940 से परिसर में कब्जाधिन थी, किराएदार को अधिनियम

की धारा 11(17) के तहत संरक्षण का दावा करने के लिए विशिष्ट साक्ष्य प्रस्तुत करनी होगी। यह एक दीवानी मुकदमा है और पक्षकार को इस मामले में अभिकथन करना होगा और उसे साबित करना होगा।

[983-जी-एच विशिष्ट साक्ष्य; 984-ए]

सिविल अपीलीय क्षेत्राधिकार: सिविल अपील संख्या 1113/2003

सी.आर.पी. में केरल उच्च न्यायालय के निर्णय और आदेश दिनांक 9.11.2001 से। 2001 की संख्या 263

सी.के. अपीलकर्ता की ओर से श्री कुमार और सुश्री दीपा एस. मोनप्पन

टी.एल.वी. प्रतिवादियों की ओर से अय्यर और ए.रघुनाथ न्यायालय का निर्णय द्वारा

ए.के.माथुर, न्यायमूर्तिः हस्तगत अपील केरल उच्च न्यायालय की खण्डपीठ के आदेश के विरूद्ध प्रस्तुत की गई है जिसमें उक्त खण्डपीठ ने, अपने आदेश दिनांक 09-11-2001 के माध्यम से, अपीलीय न्यायालय के उस निष्कर्ष को पुष्ट किया था, जिसके अन्तर्गत, अपीलीय न्यायालय द्वारा, किरायेदार की बेदखली का आदेश, अन्तर्गत धारा 11(3) केरल इमारतों (पट्टा और किराया नियंत्रण) अधिनियम, 1965 (इसके बाद "अधिनियम" के रूप में संदर्भित) के माध्यम से प्रदत्त किया था और अधिनियम की धारा 11 (4) (i) और 11 (4) (ii) के तहत मकान मालिक को, बेदखली

दिए जाने से इनकार किया था और दोनों पुनरीक्षण याचिकाओं को खारिज कर दिया।

इस अपील के निपटारे के लिए जो संक्षिप्त तथ्य आवश्यक हैं, वे यह हैं कि विचाराधीन इमारत का स्वामित्व एक संयुक्त हिंदू परिवार के पास था, जिसमें से नागजी अमरसी सबसे वरिष्ठ सदस्य थे। उनका एक छोटा भाई था, पुरुषोत्तम अमरसी। नागजी अमरसी का एक बेटा था, जयनंदन अमरसी। पुरुषोत्तम अमरसी के तीन बेटे थे, जिनमें से एक की 20 साल की उम्र में मृत्यु हो गई। उनके दो जीवित बेटे थे, नारंजी और मकेकलाल। एक भागीदारी फर्म थी जिसमें संयुक्त परिवार के सदस्य शामिल थे। प्रश्नगत इमारत को फर्म को पट्टे पर दिया गया था। यह फर्म किरायेदार थी और बाद में इसे एक प्राइवेट लिमिटेड कंपनी में बदल दिया गया। एक विभाजन में, भवन का बड़ा हिस्सा मकान मालिकों द्वारा प्रतिनिधित्व किए गए समूह को, आवंटित किया गया था। धीरे-धीरे, कंपनी में मकान मालिकों का हित किरायेदार के समूह का प्रतिनिधित्व करने वाले परिवार के सदस्यों द्वारा ले लिया गया। किराया याचिका से अनुसूचित संपदा, उस भवन का एक बड़ा हिस्सा था जिसे मकान मालिकों द्वारा प्रतिनिधित्व किए गए परिवार की शाखा के हिस्से के लिए अलग रखा गया था। मकान मालिकों ने इस आधार पर बेदखली के लिए मुकदमा दायर किया कि प्रतिवादी संख्या 5, 6 और 9 (इस प्रकरण में) ने अपनी शिक्षा पूरी कर ली थी और बेकार बैठे थे और वे निर्धारित भवन में अपना खुद का व्यवसाय शुरू करना चाहते थे

और उन्हे कालीकट में अपने स्वयं के व्यवसाय के लिए अनुसूचित भवन की आवश्यकता थी। इसलिए, उन्होंने अधिनियम की धारा 11 (3) के तहत किरायेदार को बेदखल करने का दावा किया। उन्होंने एक दर्जी को उपकिराएदारी पर देने के आधार का भी अनुरोध किया, जिसे किराया नियंत्रण कार्यवाही में एक पक्ष के रूप में सम्बद्ध किया गया था। यह दलील दी गई थी कि मकान मालिकों की सहमति के बिना उपकिराएदारी पर देना अनधिकृत था। इसलिए, मकान मालिक अधिनियम की धारा 11 (4) (i) के तहत बेदखली के हकदार थे। उन्होंने भवन में भौतिक परिवर्तन का भी आक्षेप लगाया और अधिनियम की धारा 11 (4) (ii) के तहत डिक्री की मांग की। किरायेदार ने बेदखली याचिका का विरोध किया और यह दलील दी कि वह स्थायी पट्टेधारी था और मकान मालिकों द्वारा बेदखल नहीं किया जा सकता था। उन्होंने वादी की वास्तविक आवश्यकता से भी इनकार किया और प्रश्नगत परिसर में बदलाव से भी इनकार किया। यह भी दलील दी गई कि किरायेदारी 1940 से पहले शुरू हो गई थी। इस प्रकार, किरायेदार को अधिनियम की धारा 11 (17) के आधार पर सद्भाविक आवश्यकता के आधार पर बेदखल नहीं किया जा सकता था। किरायेदार ने प्रतिवाद किया कि मकान मालिक बेदखली के आदेश के हकदार नहीं थे।

किराया नियंत्रक के समक्ष साक्ष्य प्रस्तुत किया गया। किराया नियंत्रण न्यायालय ने यह निर्धारित किया कि, मकान मालिकगण अधिनियम की धारा 11 (3) के तहत या धारा 11 (4) (i) के तहत

बेदखली का आदेश प्राप्त करने के हकदार नहीं थे। मकान मालिकों ने अपीलीय प्राधिकरण के समक्ष अपील प्रस्तुत की। प्रासंगिक साक्ष्य के पुनर्मूल्यांकन पर अपीलीय प्राधिकारी इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि मकान मालिकों ने बेदखली का दावा किया था, जो अधिनियम की धारा 11 (3) के तहत अपने स्वयं के व्यवसाय की सद्भाविक आवश्यकता के आधार पर, बेदखली के वाद को स्थापित कर पाये थे। लेकिन वे अधिनियम की धारा 11 (4) (i) और 11 (4) (ii) तहत बेदखली के अपने दावे को साबित नहीं कर सके। इस प्रकार, अपीलीय प्राधिकरण द्वारा मकान मालिकों द्वारा दायर अपील को आंशिक रूप से अनुमति दी गई और अधिनियम की धारा 11 (3) के तहत सद्भाविक आवश्यकता के आधार पर बेदखली का आदेश दिया गया। जबकि अधिनियम की धारा 11 (4) (i) और 11 (4) (ii) के तहत परिसर में उप-किरायेदारी और सारभूत परिवर्तन के आलेख को अस्वीकार कर दिया गया था। भूस्वामी और किरायेदार दोनों ने पुनरीक्षण याचिकाएं दायर कीं, अर्थात मकान मालिकों की पुनरीक्षण याचिका अधिनियम की धारा 11 (4) (i) और 11 (4) (ii) के तहत परिसर में उप-किराएदारी और सारभूत परिवर्तन के आधार पर बेदखली के आदेश के लिए थी और किरायेदार ने अधिनियम की धारा 11 (3) के तहत मकान मालिकों की सद्भाविक आवश्यकता के आधार पर बेदखली के खिलाफ पुनरीक्षण याचिका दायर की। इसलिए, दोनों पुनरीक्षण याचिकाओं को एक साथ जोड़ा गया और उच्च न्यायालय की खंड पीठ द्वारा अपने दिनांक 9.11.2001 के आदेश

द्वारा उनका निपटारा किया गया। इसलिए, उच्च न्यायालय द्वारा पारित उपरोक्त आदेश के खिलाफ वर्तमान अपील प्रस्तुत की गई।

अपीलार्थी के विद्वान वकील ने अपील प्राधिकारी के साथ-साथ उच्च न्यायालय के निष्कर्ष को मकान मालिकों की सद्भाविक आवश्यकता के संदर्भवश चुनौती दी एवं द्वितीय, उन्होंने अधिनियम की धारा 11 (17) के तहत सुरक्षा की भी मांग की कि अपीलकर्ता-किरायेदार 1940 से परिसर के कब्जे में था, इसलिए, अपीलकर्ता अधिनियम की धारा 11 (17) के तहत सुरक्षा का हकदार है।

सबसे पहले हम मकान मालिकों की सद्भाविक आवश्यकता के प्रश्न पर विचार करेंगे। जहाँ तक संपत्ति के विभाजन और वर्तमान परिसर मकान मालिकों के हिस्से में आने की बात है, यह विवाद नहीं है कि, भवन का हिस्सा मकान मालिकों के हिस्से में आ गया है और वे पारिवारिक संपत्तियों के विभाजन के परिणामस्वरूप मालिक हैं। लेकिन सवाल यह है कि क्या इमारत के हिस्से के मालिक मकान मालिकों ने सद्भाविक आवश्यकता के संबंध में अपने अभिवर्णन की पुष्टि की है या नहीं। हम निचली अदालत के निष्कर्षों के साथ-साथ अपीलीय प्राधिकरण और उच्च न्यायालय के निष्कर्षों पर भी गौर कर चुके हैं और बारीकी से जांच के बाद हमारा यह विचार नहीं है कि, अपीलीय न्यायालय और उच्च न्यायालय द्वारा दिए गए निष्कर्ष में, विकृत होने या बिना किसी आधार के होने पर, हस्तक्षेप किया

जा सकता है। मकान मालिकों ने यह दिखाने के लिए सबूत दिए हैं कि उनके बेटों में से, एक बेटे के पास, कंप्यूटर संस्थान शुरू करने के लिए आवश्यक योग्यता थी और वे अपने व्यापार के विस्तार के लिए, कंप्यूटर संस्थान की स्थापना कालीकट और अन्य स्थानों में चाहते हैं। निचली अदालत के साथ-साथ पहली अपीलीय अदालत और उच्च न्यायालय ने पीडब्ल्यू 2 और 3 के बयानों की जांच की और उनके साक्ष्य पर विचार करने के बाद, अपीलीय अदालत ने निचली अदालत के निष्कर्ष को उलट दिया और कहा कि प्रत्यर्थी-जमींदारों की कालीकट में व्यवसाय शुरू करने की आवश्यकता सद्भाविक एवं वास्तविक है। यह अभिनिर्धारित किया गया कि यह नहीं कहा जा सकता है कि एक व्यक्ति जिसका पहले से ही एक स्थान पर व्यवसाय है, वह देश में किसी अन्य स्थान पर अपने व्यवसाय का विस्तार नहीं कर सकता है। यह सच है कि मकान मालिकों का अपना व्यवसाय चेन्नई और हैदराबाद में फैला हुआ है और यदि वे कालीकट में अपने व्यवसाय का विस्तार करना चाहते हैं तो इसे अप्राकृतिक नहीं कहा जा सकता है, जिससे किरायेदार को परिसर से बेदखल करने से इनकार किया जा सके। यह हमेशा मकान मालिक का विशेषाधिकार है कि यदि उसे व्यवसाय के विस्तार के लिए अपने प्रामाणिक उपयोग के लिए विचाराधीन परिसर की आवश्यकता है तो यह कहने का कोई आधार नहीं है कि मकान मालिक पहले से ही चेन्नई और हैदराबाद में अपना व्यवसाय कर रहे हैं, इसलिए यह सद्भाविक आवश्यकता नहीं है। किरायेदार, मकान मालिक हेतु

शर्तें तय नहीं कर सकता है और उसे सलाह नहीं दे सकता है कि उसे क्या करना चाहिए और क्या नहीं। व्यवसाय की प्रकृति और व्यवसाय का स्थान चुनना हमेशा मकान मालिक का विशेषाधिकार होता है। लेकिन, निचली अदालत ने किरायेदार-अपीलार्थी के पक्ष में फैसला सुनाया। लेकिन अपीलीय अदालत के साथ-साथ उच्च न्यायालय ने अभिलेख पर साक्ष्य की जांच करने के बाद, निचली अदालत के निष्कर्ष को उलट दिया और कहा कि मकान मालिकों द्वारा कालीकट में व्यवसाय स्थापित करने की आवश्यकता को सद्भाविक की कमी नहीं कहा जा सकता है।

अपीलार्थी के विद्वान वकील ने आलेखित किया कि वास्तव में कालीकट में या तो व्यवसाय शुरू करने या इसका विस्तार करने की यह याचिका दिखावा के अलावा और कुछ नहीं है और यह भी बताया गया कि कुछ बेटों की विविध गतिविधियाँ हैं और वे पहले से ही किसी अन्य व्यवसाय में स्थापित हैं और बेटों में से एक, अर्थात प्रतिवादी संख्या 9 पहले ही संयुक्त राज्य अमेरिका जा चुका है और वह वहाँ बस गए। इसलिए, आवश्यकता सद्भाविक नहीं है। हम यह समझने में विफल रहते हैं कि जब दो बेटे होते हैं और अगर वे कालीकट में अपने व्यवसाय का विस्तार करना चाहते हैं तो यह नहीं कहा जा सकता है कि इसकी आवश्यकता बनावटी है। मकान मालिकों और उनके बेटों के लिए मामले के निपटारे तक इंतजार करना संभव नहीं है। उन्हें जीवन में कुछ करना होता है और वे तब तक इंतजार नहीं कर सकते जब तक कि अपीलार्थी को

विचाराधीन परिसर से बेदखल नहीं कर दिया जाता। यह आम अनुभव है कि हमारे देश में मकान मालिक किरायेदार विवादों में लंबा समय लगता है और इस तरह के मुकदमे के समाधान के लिए अनिश्चित काल तक इंतजार नहीं किया जा सकता है। यदि वे अपने व्यवसाय का विस्तार करना चाहते हैं, तो यह नहीं कहा जा सकता है कि इनकी आवश्यकता सद्भाविक नहीं है। यह आक्षेप लगाया जाता है कि भूस्वामी का एक बेटा अमेरिका में बस गया हैं। यह वस्तुस्थिति इस तथ्य से प्रत्याहरित नहीं कर सकती है कि भूस्वामी के अन्य बेटे कालीकट में अपने व्यवसाय का विस्तार करना चाहते हैं। भारतीय अर्थव्यवस्था वैश्विक हो रही है और यह असंभव नहीं कि भूस्वामी के मुक्तहस्त पुत्रगण, अपनी मातृभूमि वापस न आ सकते हो। वे हमेशा वापस आ सकते हैं और कालीकट में अपना व्यवसाय शुरू कर सकते हैं। इस आधार पर हम मकान मालिकों को, बेदखली करने से इनकार नहीं कर सकते।

भूस्वामी द्वारा सद्भाविक आवश्यकताओं की याचिका के अन्तर्गत, उत्तरदाताओं के लिए विद्वान वरिष्ठ वकील ने इसका समर्थन करने की मांग, *मृतक रामकुबाई (श्रीमती) जरिये विधिक प्रतिनिधीगण एवं अन्य बनाम हजारीमल डोकलचंद चंडक और अन्य* [1999] 6 एस. सी. सी. 540, के मामले का अवलंब लेकर, प्रस्तुत की, जिसमें यह वर्णित किया गया कि, यह देखा गया था कि बी मुकदमा दायर करने की तारीख को बेरोजगार था, लेकिन इस बीच कुछ व्यवसाय शुरू कर दिया और उस संदर्भ में, माननीय

न्यायमूर्तियों ने माना कि, जब तक कि उक्त प्रकरण अंतिम रूप से निर्णित नहीं हो जाता, उसके निष्क्रिय होने की उम्मीद नहीं की जा सकती है। यह माना गया कि अगर अग्रज पुत्र अपनी माता के साथ व्यवसाय कर रहा हैं इससे यह नहीं कहा जा सकता कि, उसके स्वयं के व्यवसाय को शुरू करने हेतु उसकी आवश्यकता नहीं हो सकती हो।

न्यायिक दृष्टांत *प्रताप राय तनवानी और अन्य बनाम वी. उत्तम चंद और अन्य* [2004] 8 एस. सी. सी. 490 में यह अभिनिर्धारित किया गया था कि मकान मालिक की सद्भाविक आवश्यकता को याचिका की तारीख के परिप्रेक्ष्य में देखा जाना चाहिए और लंबी मुकदमेबाजी के कारण, बीच में अंतःक्षेप करने वाली घटनाएं प्रासंगिक नहीं होंगी। यह अभिनिर्धारित किया गया कि महत्वपूर्ण तिथि याचिका की तिथि है। माननीय न्यायमूर्तियों ने आगे कहा कि सामान्य नियम यह है कि पक्षों के अधिकारों और दायित्वों को याचिका की तारीख को निर्धारित किया जाना है और राहत को ढालने के लिए बाद की घटनाओं को ध्यान में रखा जा सकता है बशर्ते कि ऐसी घटनाओं का उन अधिकारों और दायित्वों पर भौतिक प्रभाव पड़े। माननीय न्यायमूर्तियों ने आगे यह देखा कि यह एक स्पष्ट वास्तविकता है कि मुकदमे का जीवन जितना लंबा होगा, लंबे अंतराल के दौरान नये घटनाक्रमों की संख्या उतनी ही अधिक होगी। इसलिए अदालतों को इस मामले में बहुत ही व्यावहारिक दृष्टिकोण अपनाना होगा। हमारे देश में यह आम अनुभव है कि, विशेष रूप से मकान मालिक-किरायेदार का मुकदमा

लंबे समय तक चलता है। यह सच है कि, न तो मुकदमा शुरू करने वाला व्यक्ति बेकार बैठ सकता है और न ही घटनाओं का घटित होना उसके द्वारा रोका जा सकता है। इसलिए, महत्वपूर्ण घटना को उस तारीख के रूप में लिया जाना चाहिए जब बेदखली के लिए मुकदमा दायर किया गया था, जब तक कि बाद की घटना ने राहत के आधार को भौतिक रूप से नहीं बदल दिया।

न्यायिक दृष्टांत *गया प्रसाद बनाम प्रदीप श्रीवास्तव*, [2001] 2 एस. सी. सी. 604 के मामले में, माननीय न्यायमूर्तियों ने कहा कि मकान मालिक को कानूनी प्रणाली की धीमी गति के लिए दंडित नहीं किया जाना चाहिए और मकान मालिक की सद्भाविक आवश्यकता के निर्णयन के लिए महत्वपूर्ण तिथि बेदखली के लिए उसके आवेदन की तारीख है।

माननीय न्यायमूर्तियों ने यह भी कहा कि मुकदमेबाजी की प्रक्रिया को मकान मालिक की राहत से इनकार करने का आधार नहीं बनाया जा सकता है, जबकि मुकदमेबाजी अंतिम चरण तक पहुंचती है। हालाँकि, माननीय न्यायमूर्तियों ने आगे कहा कि बाद की घटनाओं को कुछ स्थितियों में मकान मालिक की आवश्यकता की वास्तविकता पर हावी माना जा सकता है, लेकिन केवल तभी जब वे ऐसी प्रकृति और आयाम के हों जो ऐसी आवश्यकता को पूरी तरह से लोपित कर दें और इसका महत्व पूरी तरह से खो दें।

इस प्रकार, हमारी राय है कि प्रथम अपीलीय न्यायालय के साथ-साथ उच्च न्यायालय द्वारा लिया गया दृष्टिकोण उचित प्रतीत होता है और मामले को विपरीत दृष्टिकोण से देखने का कोई कारण नहीं है।

जहां तक धारा 11 (4) (I) और (ii) के तहत परिसर में उप-किरायेदारी और तात्विक परिवर्तन के आधार पर किरायेदार को बेदखल करने के संबंध में पहली अपीलीय अदालत और उच्च न्यायालय के निष्कर्ष का संबंध है, जो मकान मालिकों के खिलाफ निर्णीत किया गया है और हमारे समक्ष कोई प्रति-अपील नहीं है। इसलिए, हमें नीचे दिए गए न्यायालयों के निष्कर्षों के गुणावगुण पर जाने की आवश्यकता नहीं है। हालाँकि, एक और तर्क जिसका अपीलार्थी के लिए विद्वान वकील ने बहुत गंभीरता से आलेख किया है, यह था कि प्रश्नगत परिसर में 1940 से पहले किरायेदार का कब्जा था। इसलिए, अपीलार्थी अधिनियम की धारा 11 (17) के तहत संरक्षण का हकदार है। अधिनियम के प्रासंगिक प्रावधान निम्नानुसार हैंः

> "धारा 11 (17) इस धारा में कुछ भी निहित होने के बावजूद, एक किरायेदार जो एक किरायेदार के रूप में 1 अप्रैल 1940 से एक इमारत पर लगातार कब्जा कर रहा है, मकान मालिक के सद्भाविक कब्जे या उसके परिवार के किसी सदस्य, जो उस पर निर्भर है, द्वारा कब्जे के लिए

बेदखल होने के लिए उत्तरदायी नहीं होगा। परन्तु, निवासीय इमारत का भूस्वामी, ऐसे किसी किरायेदार को बेदखल करवाने का अधिकारी होगा, अगर उक्त भूस्वामी शहर, कस्बा या गांव, जहां उक्त इमारत स्थित है, से बाहर, न्यूनतम पांच वर्ष की अवधि से रह रहा हैं, ऐसी किसी इमारत के कब्जे प्राप्ती के आवेदन को, किराया अधिकरण न्यायालय में प्रस्तुत करने से पूर्व एवं वह उक्त इमारत को सद्भाविक रूप से, स्वयं के अथवा अपने परिवार के किसी सदस्य के स्थायी निवास हेतु चाहता हैं अथवा उसे निवास हेतु स्थान की तीव्र आवश्यकता हैं एवं उसके पास खुद का कोई निवास नहीं हैं ।

स्पष्टीकरण-1 अप्रैल, 1940 से निरंतर कब्जे की अवधि की गणना में, वह अवधि, यदि कोई हो, जिसके दौरान मकान मालिक उस शहर, शहर या गांव के बाहर रह रहा था जिसमें इमारत थी की स्थिति को बाहर रखा जाएगा। "

अपीलार्थी के लिए विद्वान वकील के इस आलेख की सराहना करने के लिए, हमें व्यवसाय के बारे में इतिहास में वापस जाना होगा विद्वान वकील हमें पृष्ठभूमि इतिहास की ओर पर ले गए और वर्तमान मामले में दिए गए साक्ष्य की ओर हमारा ध्यान आकर्षित किया और उन्होंने अपीलकर्ता फर्म

के आयकर मामले में इस न्यायालय के एक निर्णय की ओर भी हमारा ध्यान आकर्षित किया और वे चाहते थे कि हम उसमें बताए गए तथ्यों का न्यायिक संज्ञान लें। इस फर्म की उत्पत्ति के बारे में कुछ तथ्यों को दोहराने के लिए, फर्म सैत नागजी पुरुषोतम एंड कंपनी की शुरुआत वर्ष 1902 में की गई थी और इसने बैंकिंग और टुकड़ों के सामान और धागे का व्यवसाय किया था। 6 दिसंबर, 1918 को साझेदारी के एक समझौते द्वारा इसका पुनर्गठन किया गया था। छह साथी थे, जिनमें से पांच एक परिवार के सदस्य थे और छठा एक बाहरी व्यक्ति था। समझौते में प्रावधान किया गया था कि साझेदारी, उसके संविधान में परिवर्तन द्वारा, भंग नहीं हो सकती थी। 1932 के आसपास, फर्म ने साबुन का निर्माण और बिक्री शुरू की। इसने छतरी का निर्माण और बिक्री भी शुरू कर दी थी। भागीदारों में से एक की मृत्यु हो गई और दूसरा सेवानिवृत्त हो गया, और 2 जनवरी, 1934 को, शेष चार भागीदारों ने एक अलग विलेख, 1918 के समझौते की कुछ शर्तों को, परिवर्तीत कर निष्पादित किया। लेकिन यह प्रावधान करते हुए कि परिवर्तनों के अधीन पहले का समझौता प्रभावी बना रहना था। इसके बाद, 30 मई, 1939 को साझेदारी के दो समझौतों को निष्पादित किया गया, जिनमें से पहले में कहा गया कि साबुन और छतरी का निर्माण और बिक्री अक्टूबर-नवंबर, 1937 से एक चौथे भागीदार के साथ, तीन भागीदारों द्वारा चलाया गया था और दूसरे विलेख में कहा गया था कि तीन भागीदार बैंकिंग, टुकड़ों-वस्तुओं और धागे में व्यवसाय करना जारी रखेंगे। इस

विलेख में आगे कहा गया कि 1918 के समझौते को रद्द कर दिया गया था और फर्म के मामलों को नए समझौते द्वारा विनियमित किया जाएगा। बाद में, 30 अक्टूबर, 1943 के एक दस्तावेज के द्वारा, कुछ भागीदारों की सेवानिवृत्ति और नए भागीदारों के प्रवेश के बाद, पक्षकार एक साझेदारी के रूप में, 30 मई, 1939 के विलेखों के तहत गठित दो साझेदारी द्वारा संचालित व्यवसाय को, जारी रखने के लिए सहमत हुए। अंततः, दिनांकित 7 फरवरी, 1948 के एक समझौते के तहत, दिनांक 13 नवंबर, 1947 से एक कंपनी ने इस व्यवसाय को अपने हाथ में ले लिया था। लेकिन हमारे सामने सवाल यह है कि जब नई कंपनी का गठन 1948 में किया गया तब इसमें पुराने भागीदार थे या नहीं और इस कंपनी की प्रकृति क्या है। हमने किरायेदार के आवश्यक साक्ष्य को यह साबित करने के लिए भी लिया गया था कि फर्म के सभी पुराने सदस्य 1948 में नई फर्म के गठन के समय भी बने रहे। लेकिन सबूतों को देखने के बाद यह स्पष्ट नहीं होता है कि, वास्तव में पहले की साझेदारी फर्म के सभी पुराने सदस्य, नवगठित कंपनी, यानी मैसर्स सैत नागजी पुरुषोत्तम एंड कंपनी लिमिटेड, एक निजी लिमिटेड कंपनी, जिसे भारतीय कंपनी अधिनियम, 1930 के तहत निगमित किया गया था, के निदेशक बने रहे है। अपीलार्थी यह साबित करने में विफल रहा कि पुरानी फर्म, जिसे बाद में एक निजी लिमिटेड कंपनी में परिवर्तित कर दिया गया था, के सभी निदेशक वे थे जो पुरानी साझेदारी फर्म के भागीदार थे। हम इस मुकदमे में दिए गए सबूतों से खुद को आश्वस्त नहीं कर सके

कि उक्त फर्म जो साझेदारी फर्म थी, और बाद में एक प्राइवेट लिमिटेड कंपनी में परिवर्तित हो गयी थी, में वही निदेशक थे।

अपीलार्थी ने यह दिखाने के लिए कोई स्पष्ट साक्ष्य नहीं दिया कि वही फर्म जो 1918 में थी, बाद में उन्हीं निदेशकों के साथ एक निजी लिमिटेड कंपनी में परिवर्तित हो गई। अतः वर्तमान मामले में साक्ष्य का पूरी तरह से अभाव है। हमने अपीलार्थी के लिए विद्वान वकील को उल्लेखित किया कि, हमें संतुष्ट करने के लिए कि, पुरानी फर्म जो 1948 से पहले थी, उसी निदेशक के साथ एक निजी लिमिटेड कंपनी में परिवर्तित हो गई। लेकिन इसके लिए विद्वान वकील अपीलार्थी हमें संतुष्ट करने में विफल रहे। वास्तव में, ऐसा प्रतीत होता है कि इस प्रश्न को न तो निचली अदालत, या अपीलीय अदालत या उच्च न्यायालय के समक्ष गंभीरता से उठाया गया है। अधिनियम की धारा 11 (17) के तहत संरक्षण के संबंध में निचली अदालत द्वारा देखा गया था कि, यह साबित करने के लिए कि फर्म 1940 से किरायेदार भवन में बनी हुई है, किरायेदार द्वारा यह स्वीकार किया जाता है कि किरायेदार कंपनी के गठन से पहले व्यवसाय साझेदारी फर्म द्वारा संचालित किया गया था। प्रदर्श B-6 से यह स्पष्ट है कि किरायेदार कंपनी 1948 में अस्तित्व में आई और ज्ञापन और संगठन का लेख स्पष्ट रूप यह दर्शाता है कि कंपनी को 6.2.1948 से निगमित किया गया था। इसलिए, यह माना गया कि यह निगमन की तारीख से एक अलग कानूनी इकाई है। विचारण न्यायालय द्वारा यह अभिनिर्धारित किया

गया कि किरायेदार कंपनी, साझेदारी के किसी भी किरायेदारी अधिकार का दावा नहीं कर सकती है क्योंकि नवगठित अलग कानूनी इकाई 6.2.1948 पर अस्तित्व में आई थी। इसलिए, निचली अदालत ने यह पाया कि इस मामले में धारा 11 (17) के बहुत महत्वपूर्ण घटक की कमी है। इसी तरह, अपीलीय अदालत ने अपने आदेश के परिच्छेद 25 में यह भी कहा कि किरायेदार कंपनी ने यह दिखाने के लिए कोई दस्तावेज प्रस्तुत नहीं किया है कि 1940 से पहले इस इमारत पर उसका कब्जा था। वास्तव में, प्राइवेट लिमिटेड कंपनी 1948 में अस्तित्व में आई थी। इसलिए, पहली अपीलीय अदालत ने भी निचली अदालत के निष्कर्ष की पुष्टि की। इसी तरह, उच्च न्यायालय ने नीचे दी गई अदालतों के निष्कर्षों की पुष्टि की और कहा कि किराया नियंत्रण न्यायालय और अपीलीय प्राधिकरण दोनों ने सही निर्णय दिया कि किरायेदारी केवल वर्ष 1948 में शुरू हुई थी और इसलिए किरायेदार अधिनियम की धारा 11 (17) के संरक्षण का दावा नहीं कर सकता है। नीचे दिए गए सभी न्यायालयों के इस समवर्ती निष्कर्ष को देखते हुए निगमित आवरण को भेदने की शायद ही कोई गुंजाइश थी। हालांकि, विद्वान वकील ने बहुत दृढ़ता से आग्रह किया कि इस न्यायालय के पहले के आय-कर के मामले में फैसले में दिए गए तथ्य, इस फर्म के संबंध में, दीवानी मुकदमे में दिए गए वास्तविक साक्ष्य के अंतर्गत ध्यान में रखे जा सकते है। हम फर्म के संबंध में किसी अन्य मामले में अनुरोध किए गए तथ्यों पर विचार नहीं कर सकते हैं, लेकिन यह साबित करने के

लिए कि वही फर्म 1.4.1940 पर परिसर पर कब्जा कर रही थी, किरायेदार को विशिष्ट साक्ष्य का नेतृत्व करना होगा ताकि इस मुकदमे में अधिनियम की धारा 11 (17) के तहत संरक्षण का दावा किया जा सके।

हमने स्वयं इस मामले में प्रस्तुत किए गए साक्ष्यों का अध्ययन किया है ताकि यह पता लगाया जा सके कि क्या किरायेदार द्वारा यह दिखाने के लिए कोई सबूत दिया गया है कि वही साझेदारी फर्म तब भी जारी रही, जब उसे कंपनी अधिनियम के तहत, उसी निदेशक मंडल के साथ प्राइवेट लिमिटेड कंपनी में परिवर्तित किया गया। लेकिन हमें यह कहते हुए खेद है कि इस मामले में ऐसा नहीं है। यह एक दीवानी मुकदमा है और पक्ष को इस मामले में दलील देनी होगी और साबित करना होगा। हम इस मामले से संबंधित अन्य मामलों में दिखाई देने वाले तथ्यों पर गौर नहीं कर सकते।

विद्वान वकील ने *मद्रास बैंगलोर ट्रांसपोर्ट कंपनी (पश्चिम) बनाम इंदर सिंह और अन्य* [1986] 3 एस. सी. सी. 62 के मामले में इस

न्यायालय के एक निर्णय की ओर हमारा ध्यान आकर्षित किया है। इस मामले में, तथ्यों की जांच करने पर इस अदालत ने पाया कि कंपनी किरायेदार-फर्म का एक अपरस्वरूप या कॉर्पोरेट प्रतिबिंब थी और दोनों सभी व्यावहारिक उद्देश्यों के लिए एक थे जिनके पास पर्याप्त पहचान थी और इसलिए, उस संदर्भ में उनके माननीय न्यायामूर्तियों का यह मानना

था कि, परिसर का भागीदारी फर्म द्वारा कंपनी को, उपकिरायेदारी अथवा अर्पण अथवा कब्जा सुपुर्द किया जाना दर्षित नहीं था जिससे कि, दिल्ली किराया नियंत्रण अधिनियम, 1958 की धारा 14 (1) (बी) आकर्षित होती हो। इसलिए, इस मामले का फैसला विशिष्ट तथ्यों पर किया गया और यह पाया गया कि किरायेदार-कंपनी के पास कोई नया नहीं था, बल्कि वही भागीदार थे। इसलिए, उनके अधिपतियों का मानना था कि नई कंपनी का अर्थ उप-किरायेदार होना नहीं हो सकता है। इसलिए, विशिष्ट तथ्यों को ध्यान में रखते हुए, यह माना गया कि कंपनी की नई पहचान वही थी जो पुरानी थी। इसलिए, यह मामला अपने तथ्यों के आधार पर अलग है।

विश्व नाथ और अन्य बनाम वी. चमन लाल खन्ना और अन्य ए.आई.आर. (1975) दिल्ली 117 के मामले में दिल्ली उच्च न्यायालय के विद्वान एकल न्यायाधीश ने उन्हीं सदस्यों के साथ एक नई संस्था के गठन की अवधारणा की जांच की। यह देखा गया कि यदि कोई व्यक्ति परिसर को किराए पर लेता है और फिर अपनी एकमात्र स्वामित्व वाली कंपनी को एक निजी लिमिटेड कंपनी में बदल देता है जिसमें उसका नियंत्रण हित है, तो उसे परिसर से बेदखल नहीं किया जा सकता है। तथ्यों की जांच करने के बाद, विद्वान एकल न्यायाधीश ने यह विचार रखा कि पहले की कंपनी और उत्तराधिकारी सभी मामलों में समान हैं। इस संबंध में, विद्वान एकल न्यायाधीश ने बड़ी संख्या में अंग्रेजी मामलों की भी जांच की। *चैप्लिन वी. स्मिथ,* (1926) 1 के. बी. 198 में अपील न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया

कि संबंधित परिसरों में कोई हित कंपनियों या उनमें से किसी को नहीं दिया गया और वहाँ पट्टेदार की प्रसंविदा का, परिसर या उसके किसी भी हिस्से के कब्जे के सुपुर्द न किये जाने से, कोई उल्लंघन नहीं हुआ था। इस मामले में, पूरा प्रश्न तथ्य के प्रश्न पर बदल गया और इसे परिच्छेद 41 में इस प्रकार देखा गयाः

"41. संक्षेप मेंः तथ्यों पर, साबित हुआ कि विश्व नाथ किरायेदार थे। उन्होंने नवंबर 1962 में अपने नाम पर परिसर किराए पर लिया। 1964 में उन्होंने एक कंपनी बनाई जिसमें उनका नियंत्रण हित था और जिसमें वे मुख्य कार्यकारी और प्रबंध निदेशक हैं। परिसर पर उनका कब्जा है। उनके बेटे और पत्नी उसके साथ दूसरे हिस्सेदार हैं। मेरी राय में कोई उपकिरायेदारी अथवा कब्जे का सुपुर्द किया जाना नहीं हैं।"

इसके विपरीत प्रतिवादी के विद्वान वकील ने *सिंगर इंडिया लिमिटेड बनाम चंदर मोहन चड्ढा और अन्य* [2004] *7* एस. सी. सी. 1 के मामले में इस न्यायालय के हाल के फैसले की ओर हमारा ध्यान आकर्षित किया है, जिसमें *मद्रास बैंगलोर ट्रांसपोर्ट कंपनी (पश्चिम)* (ऊपर वर्णित) के निर्णय पर भी विचार किया गया था। इस न्यायालय ने उपरोक्त निर्णय पर विचार करने के बाद निम्नलिखित टिप्पणी कीः

" इस मामले का फैसला विशुद्ध रूप से इसके विशिष्ट तथ्यों पर किया गया है और कानून का सिद्धांत निर्धारित नहीं किया गया है।"

माननीय न्यायमूर्तियों ने यह भी देखा कि नई फर्म या प्राइवेट लिमिटेड कंपनी की वास्तविक पहचान का पता लगाने के लिए, किसी को कॉर्पोरेट पर्दा उठाना होगा और यह जांचना होगा कि क्या वही भागीदार जारी हैं या नहीं।

इस संबंध में, प्रत्यर्थी के विद्वान वकील ने *इलेक्ट्रिकल केबल डेवलपमेंट एसोसिएशन बनाम अरुण कमर्शियल प्रिमाइसेस कोऑपरेटिव हाउसिंग सोसाइटी लिमिटेड और अन्य,* [1998] 5 एस. सी. सी. 396 के मामले में इस न्यायालय के एक अन्य निर्णय की ओर हमारा ध्यान आकर्षित किया। इस मामले में, अपीलार्थी का दावा था कि एक संघ जो भारतीय केबल निर्माता संघ के रूप में जाना जाने वाला एक अपंजीकृत निकाय था, को वर्ष 1969 में प्रतिवादी संख्या 2 द्वारा परिसर कक्ष संख्या 503, 5 वीं मंजिल, अरुण चैंबर्स, तारदेव, बॉम्बे में एक किरायेदार के रूप में शामिल किया गया था। 1500 जिसमें से प्रति माह रु. 1000 परिसर की ओर था और रुपये का किराया था। 500 फर्नीचर और फिक्स्चर के लिए प्रति माह देय था। अपीलार्थी का नाम इंडियन केबल मेकर्स एसोसिएशन से बदलकर मैसर्स विद्युत केबल डेवलपमेंट एसोसिएशन कर दिया गया। इसे वर्ष 1972 में पंजीकृत किया गया था। उस संदर्भ में, सवाल उठा कि क्या मैसर्स इलेक्ट्रिकल केबल डेवलपमेंट एसोसिएशन, इंडियन केबल मेकर्स एसोसिएशन का उत्तराधिकारी है एवं माननीय न्यायमूर्तियों द्वारा अपीलार्थी -कंपनी के एसोसिएशन के ज्ञापन और लेखों की जांच करने के बाद और

मामले की समीक्षा करने के बाद पता चला कि यह वैसा नहीं था। यह देखा गया कि लेखों और एसोसिएशन के ज्ञापन में केवल यह प्रावधान किया गया है कि इलेक्ट्रिकल केबल डेवलपमेंट एसोसिएशन के सदस्य को कुछ शर्तों के अधीन प्रवेश दिया जाए। यह नहीं कहता कि अपंजीकृत संघ के वे सभी सदस्य संघ के सदस्य बन जाते हैं, जहां विद्युत केबल विकास संघ ने न्यायालय के समक्ष यह दिखाने के लिए कोई प्रस्ताव प्रस्तुत नहीं किया गया था कि वे खुद को एक निगमित निकाय में परिवर्तित कर रहे थे।

इसलिए, उस संदर्भ में, माननीय न्यायमूर्तियों ने माना कि मैसर्स इलेक्ट्रिकल केबल डेवलपमेंट एसोसिएशन, इंडियन केबल मेकर्स एसोसिएशन का वास्तविक उत्तराधिकारी नहीं है। और वे एक जैसे नहीं हैं। इसलिए, इस प्रश्न पर। वास्तव में माननीय न्यायमूर्तियों ने पाया कि यह स्पष्ट रूप से अलग विधिक इकाई थी और अपंजीकृत फर्म की उत्तराधिकारी नहीं थी और बेदखली के डिक्री की पुष्टि की।

जी. श्रीधरमूर्ति बनाम हिंदुस्तान पेट्रोलियम कॉर्पोरेशन लिमिटेड और अन्य, [1995] 6 एस. सी. सी. 605 के मामले में कर्नाटक किराया नियंत्रण अधिनियम, 1961 के प्रावधानों पर विचार किया गया और इस मामले में कंपनी के स्वैच्छिक गठन और कंपनी के अस्वैच्छिक गठन के बीच अंतर किया गया। कंपनी के अस्वैच्छिक गठन का अर्थ है कि यदि किसी कानून के आधार पर किसी कंपनी को अपने नियंत्रण में ले लिया

जाता है तो उस स्थिति में उत्तराधिकारी कंपनी उप-किरायेदार नहीं बनेगी और यदि यह कंपनी का स्वैच्छिक गठन है तो उस स्थिति में यह दिखाने के लिए आवश्यक साक्ष्य देना होगा कि सभी उद्देश्यों के लिए यह समान है। इस मामले में, ईएसएसओ (भारत में उपक्रमों का अधिग्रहण) अधिनियम, 1974 की धारा 7 के आधार पर एक निजी तेल कंपनी ईएसएसओ का विलय कर दिया गया था। इस अधिनियम के लागू होने पर, ईएसएसओ कंपनी द्वारा अपीलार्थी के साथ रखे गए पहले से मौजूद किरायेदारी अधिकार शुरू में हस्तांतरित एवं केंद्र सरकार में निहित हो गये और उसके बाद यह एक सरकारी कंपनी बन गई जिसे हिंदुस्तान पेट्रोलियम कॉर्पोरेशन लिमिटेड के नाम से जाना जाता है। उस संदर्भ में, माननीय न्यायमूर्तियों का मानना था कि परिसर पर ईएसएसओ का कब्जा था जिसे संसद के अधिनियमन के तहत केंद्र सरकार द्वारा अधिग्रहित किया गया था और इसलिए यह एक उप-किरायेदार नहीं बन जाएगा।

जानकी देवी (श्रीमती) और अन्य बनाम वी. जी. सी. जैन और अन्य, [1994] 5 एस. सी. सी. 337 (II) के मामले में बताया गया, कि परिसर को सोसायटी पंजीकरण अधिनियम के तहत पंजीकृत एक सोसायटी द्वारा टैगोर स्कूल के नाम से स्कूल के रूप में उपयोग करने के लिए किराये पर दिया गया था। प्रत्यर्थी-मकान मालिक ने सोसायटी के पक्ष में उपकिरायेदारी देने के आधार पर पट्टेदार को बेदखल करने की मांग की। अपीलार्थी सोसायटी का सचिव था। लेकिन स्कूल अलग प्रबंधन द्वारा

चलाया जाता था। माननीय न्यायमूर्तियों ने देखा कि उपकिरायेदारी निर्धारित करने का परीक्षण यह है कि, क्या मूल किरायेदार को दूसरों को शामिल करने और बाहर करने का अधिकार है। जहां वह केवल एक सचिव है, तो इस परीक्षा का उत्तर नहीं दिया जा सकता है। इसलिए, माननीय न्यायमूर्तियों ने पाया कि परिसर उपकिरायेदारी पर दिया गया है।

कॉक्स एंड किंग्स लिमिटेड और अन्य बनाम वी. चंदर मल्होत्रा (श्रीमती) और अन्य, [1997] 2 एस. सी. सी. 687 के मामले में, विचाराधीन परिसर को यूनाइटेड किंगडम कम्पनी अधिनियम के तहत निगमित एक कंपनी कॉक्स & किंग्स (एजेंट्स) लिमिटेड कंपनी को सौंप दिया गया था। कुछ समस्याओं के कारण कंपनी बंद हो गई और समझौते के तहत किराये पर दिए गए परिसर का हित उस भारतीय कंपनी को सौंपा गया था जो किरायेदार परिसर में मकान मालिक की लिखित सहमति प्राप्त किए बिना व्यवसाय करती थी।

प्रत्यर्थी द्वारा इस आधार पर इसे चुनौती दी गई थी कि यह दिल्ली किराया नियंत्रण अधिनियम के अधीन उपकिरायेदारी है। मामले की जांच करने के बाद माननीय न्यायमूर्तियों ने जवाब दिया कि चूंकि विदेशी कंपनी को एक भारतीय कंपनी को पट्टे पर दिया गया था, यह स्वैच्छिक हस्तांतरण के बराबर है और भारतीय कंपनी मकान मालिक की सहमति के बिना एक उप किरायेदार बन गई। माननीय न्यायमूर्तियों ने जवाब दिया

और अभिनिर्धारित किया कि यह दिल्ली किराया नियंत्रण अधिनियम की धारा 14 (1) (बी) के अंतर्गत उप-किरायेदारी है।

इन सभी मामलों की समीक्षा करने पर यह स्पष्ट होता है कि अपीलार्थी-किरायेदार यह साबित करने में विफल रहा है कि वर्ष 1948 में गठित प्राइवेट लिमिटेड कंपनी के निदेशक मंडल में वही भागीदार थे जो 1948 से पहले थे।

उपरोक्त निर्णयों में इस न्यायालय द्वारा निर्धारित विनिश्चयन औचित्य को ध्यान में रखते हुए, प्रत्येक मामले के तथ्यों के लिए विभिन्न परीक्षण किए गए थे। लेकिन इन सभी मामलों में जो सामान्य विनिश्चयन औचित्य प्रवर्तित है, वह यह है कि, यदि कंपनी द्वारा एक नई निगमित कंपनी को हस्तांतरण स्वैच्छिक है, तब उस मामले में किसी को यह दलील देनी होगी और साबित करना होगा कि पुरानी फर्म के सभी सदस्य, नई फर्म में बने रहे और यह मूलतः समान है। एकमात्र अपवाद यह है कि, पुरानी कंपनी का किसी नई कंपनी को हस्तांतरण विधि अथवा कानून के तहत हुआ हो। इसलिए, वर्तमान मामले में अभिलेखों का अवलोकन करने के बाद, हमने पाया है कि, तीनों न्यायालयों ने लगातार कहा है कि अधिनियम की धारा 11 (17) का लाभ इस मामले में अपीलार्थी को नहीं दिया जा सकता है और हमारी राय है कि नीचे दी गई अदालतों द्वारा लिया गया दृष्टिकोण सही है और इस अपील में हस्तक्षेप करने का कोई आधार नहीं है।

इसलिए, हमारे उपरोक्त आलेखों के परिणामस्वरूप हमारी राय है कि इस अपील में कोई योग्यता नहीं है और इसे खारिज कर दिया जाता है। हालाँकि, अपीलकर्ता लंबे समय से कब्जे में था और यह प्राइवेट लिमिटेड कंपनी है, इसलिए हम उसे प्रत्यर्थी भूस्वामी को कब्जा देने के लिए नौ महीने का समय देते हैं। अपीलार्थी आज से चार सप्ताह के भीतर उपरोक्त परिप्रेक्ष्यवृत्त, किराया नियंत्रक के समक्ष एक वचन प्रस्तुत करेगा और यदि अपीलार्थी ऐसा कोई वचन दायर नहीं करता है, तो उत्तरदाताओं के लिए इस आदेश को एक डिक्री के रूप में निष्पादित करने और पुलिस की मदद से विचाराधीन परिसर का खाली कब्जा प्राप्त करने का अधिकार होगा। लागत के बारे में कोई आदेश नहीं दिया गया है।

याचिका खारिज कर दी गई।

यह अनुवाद आर्टिफिशियल इंटेलिजेन्स टूल 'सुवास' की सहायता से अनुवादक न्यायिक अधिकारी अम्बिका सोलंकी (आर.जे.एस. UID No. RJ0767) (अतिरिक्त मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट संख्या 02, बाड़मेर) द्वारा किया गया है।

अस्वीकरणः यह निर्णय पक्षकार को उसकी भाषा में समझाने के सीमित उपयोग के लिए स्थानीय भाषा में अनुवादित किया गया है और किसी अन्य उद्देश्य के लिए इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और आधिकारिक उद्देश्यों के लिए, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रामाणिक होगा और निष्पादन और कार्यान्वयन के उद्देश्य से भी अंग्रेजी संस्करण ही मान्य होगा।